सद्ज्ञान ग्रन्थ माला का उन्नीसवाँ पुष्प — 19

पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा

सत्य
प्रेम
न्याय

अखण्ड ज्योति
- मथुरा -

—पं॰ तुलसीराम शर्मा ।

ॐ

सद्ज्ञान ग्रन्थमाला का १९ वां पुष्प—

पंचाध्यायी धर्मनीति शिक्षा

लेखक—

पं० तुलसीराम शर्मा,

उड़िया बाबा का स्थान, वृन्दावन,

प्रकाशक—

"अखंड-ज्योति कार्यालय"

मथुरा

प्रथमवार } १९४५ { मू० ।=)

भूमिका

—:o:—

हिन्दू धर्म शास्त्रों में स्थान स्थान पर ऐसे अमूल्य रत्न छिपे पड़े हैं जिनके द्वारा यदि मनुष्य लाभ उठावे तो जीवन का सच्चा लाभ प्राप्त कर सकता है। जीवन का हृदय धर्म है और नीति मस्तिष्क है। धर्म और नीति से मिश्रित जीवन में ही मनुष्य को आनन्द दायक परिस्थितियां प्राप्त हो सकती हैं।

आदरणीय पं० तुलसीराम जी का शास्त्रीय ज्ञान असाधारण है, उन्होंने हमारे अनुरोध पर अनेक ग्रन्थों का मन्थन करके सर्व साधारण के उपयोगी धर्म और नीति की शिक्षाऐं बड़े परिश्रम पूर्वक एकत्रित की हैं। इन श्लोकों में एक एक श्लोक बड़े मार्के और महत्व का है। इनको विचार पूर्वक हृदयंगम करने से विवेक बुद्धि को जगाने और उचित मार्ग को तलाश करने में पर्याप्त सहायता मिल सकती है।

इससे पूर्व जो पंचाध्यायी पुस्तक प्रकाशित हुई थी वह सब समाप्त हो गई है। उससे भी अधिक आवश्यक विषयों का समावेश करके इस नवीन पुस्तक को प्रकाशित किया जारहा है। हमारा विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों को विशेष रूप से रुचिकर होगी।

—श्रीराम शर्मा

धर्म नीति शिक्षा

अथ प्रथमोध्याय

भवानी शङ्करौ वन्दे श्रद्धा विश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥

मैं श्रद्धा और विश्वास रूपी भवानी और श्री शङ्करजी को प्रणाम करता हूँ जिनके विना सिद्ध पुरुष अपने में स्थित ईश्वर को नहीं देख पाते।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानोधर्म हतोऽवधीत् ॥

—मनु० ८।१५

जो धर्म को नष्ट करता है धर्म उसको नष्ट कर देता है धर्म की जो रक्षा करता है रक्षा किया हुआ धर्म उसकी रक्षा करता है। इस कारण धर्म को न मारना चाहिये कहीं मरा हुआ धर्म हमको न मार दे।

धर्मः कायवाङ्मनोभिः सुचरितम्।

(सुश्रुतोपरि डल्हणाचार्य कृत टीका)

मन वाणी शरीर का जो सुन्दर व्यवहार वही धर्म है। दया (निःस्वार्थ दूसरे के दुख दूर करने का यत्न करना) दूसरे का अनिष्ट चिन्तन न करना, किसी के द्रव्य तथा स्त्री पर मन

न जलाना गुरु व शास्त्र वचनों पर श्रद्धा रखना ये मन के सुन्दर चरित्र हैं।

सत्यप्रिय और हितकारी वचन बोलना, धर्म ग्रन्थों का स्वाध्याय करना यह वाणी का सुन्दर चरित्र है।

दान देना, सत् की रक्षा करना, और ब्रह्मचर्य से रहना यह शरीर का सुन्दर व्यवहार है।

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवा व धार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषांन तदाचेरत् ॥

(विष्णु धर्मोत्तर पु० ३।२५३।४४)

धर्म का तत्व सुनो सुनकर करके अमल में लाओ वह धर्म का तत्व क्या है? जो व्यवहार अपने विरुद्ध हो उसको दूसरे के साथ मत करो यही धर्म का तत्व है।

यतोऽभ्युदय निश्रेयसः सिद्धि सधर्मः ॥

(वैशेषिक)

जिस व्यवहार से इस लोक में आनन्द भोगते हुए परलोक में कल्याण प्राप्त हो वही धर्म है।

यमार्याक्रिय माणां हि शंसन्त्यागम वेदिनः ।
सधर्मो यं विगर्हन्ति तमधर्मं प्रचक्षते ॥

(कामन्दकीयनीतिसार ६।७)

शास्त्रज्ञ सदाचारी जिस कार्य की प्रशंसा करें वह धर्म है जिसकी निन्दा करें वह अधर्म है।

आरम्भो न्याययुक्तो यः सहि धर्म इतिस्मृतः
अनाचार स्त्व धर्मेति ह्येतच्छिष्टानुशासनम् ॥

(म० भा० वन० २०७।७७)

न्याययुक्त कार्य धर्म, और अन्याय युक्त कार्य अधर्म है यही श्रेष्ठ पुरुषों का मत है ।

येनोपायेन मर्त्यानां लोक यात्रा प्रसिध्यति ।
तदेव कार्यं ब्रह्मज्ञै रिदंधर्मः सनातनः ॥

(शब्दार्थ चिन्तामणिः)

जिस उपाय से मनुष्य का जीवन निर्वाह भले प्रकार होजाय वही करना यह सनातन धर्म है ।

धर्मं कार्यं यतन्शक्त्या नोचेत्प्राप्नोति मानवः।
प्राप्तो भवति तत्पुण्यमत्र नास्तित्र संशयः ॥

(म० भा० उ० ६२।६)

श्रीकृष्ण चन्द्र विदुर जी से कहते हैं कि—

धर्म के कार्य को सामर्थ्य भर करते हुए यदि सफल न हो सके तो भी उसके पुण्यफल को प्राप्त हो जाता है ।

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येतधर्मार्थौ चानु चिन्तयेत् ।
काय क्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थ मेवच ॥

(मनु० ४।९२)

ब्राह्ममुहूर्त्त [१॥ घंटा रात रहे] में उठे, धर्म और अर्थ किस प्रकार प्राप्त हों यह विचारे । धर्म और अर्थ के उपार्जन में शरीर के क्लेश का भी विचार करे । यदि धर्म अर्थ अल्प हुआ और शरीर को क्लेश अधिक हुआ तो ऐसे धर्म और अर्थ को न करे । उस समय ईश्वर का चिन्तन करे कारण कि वह समय बुद्धि के विकाश का है ।

गुणादश स्नान परस्य साधो रूपं च पुष्टिश्च बलं च तेजः।
आरोग्य मायुश्च मनोनुरुद्ध दुःस्वप्न घातश्च तपश्चमेधा ॥

[दक्ष० २।१४]

रूप, पुष्टि, बल, तेज, आरोग्यता, आयु, मनका निग्रह, दुःस्वप्न का नाश, तप और बुद्धि का विकाश ये पुण्यात्मा स्नान करने वाले को प्राप्त होते हैं।

वाङ् मनोजल शौचानि सदायेषां द्विजन्मनाम्।
त्रिभिः शौचै रूपेतो यः स स्वर्ग्यो नात्र संशयः॥
(वृद्ध पराशर स्मृति ६।२१६)

वाणी का शौच, मन का शौच, और जल का शौच इन तीन शौच से जो युक्त है वह स्वर्ग का भागी है इसमें संशय नहीं।

कठोरता, मिथ्या, चुगलखोरी, व्यर्थ की बक बक इन चार विषयों से बची वाणी शुद्ध है।

ईर्ष्या, द्वेष, छल, कपट से रहित मन शुद्ध है। स्नान करने से शरीर शुद्ध है।

सर्वेषा मेव शौचानामर्थं शौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि सशुचिर्न मृद् वारि शुचिः शुचिः॥
(मनु० ५।१०६)

सारी पवित्रताओं में धन सम्बन्धी पवित्रता (ईमानदारी) बड़ी है। जो धन के द्वारा पवित्र है वह पवित्र है। मिट्टी जल से पवित्रता वास्तविक पवित्रता नहीं। अर्थात् ईमानदारी का पैसा जिसके पास है वास्तव में वही पवित्र है।

शौचाना मर्थ शौचञ्च० (पद्मपु० ५।८६।६८)

पवित्रताओं में ऊँची कोटि की पवित्रता ईमानदारी का पैसा है।

नोच्छिष्टं कस्यचिद् दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
नचैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्॥
(मनु० २।५६)

अपना झूंठा किसी को न देवे और न किसी का झूंठा खावे। दिन और रात्रि के बीच में तीसरी बार भोजन न करे, अधिक पेट भर के न खावे झूंठे मुख कहीं न जावे।

मित भोजनं स्वास्थ्यम् ॥ चाणक्य सूत्र ३।७

मर्यादित भोजन स्वास्थ्यकर है।

अजीर्णे भोजनं विषम् ॥ ३।१०

अजीर्ण में भोजन करना विष है।

मात्राशी स्यात् । मात्रा ह्यग्नेः प्रवर्तिका । ८।१।

(वाग भट्ट सूत्र स्थान)

सदा मर्यादित भोजन करना चाहिए। ऐसा खाना ही जठराग्नि को बढ़ाता है।

मात्रा प्रमाणं निर्दिष्टं सुखं यावद् विजीयते ॥२॥

जो भोजन सहज में पच जाय वही इसकी मात्रा है।

न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतान्यति लालयेत् । (२।२६)

रूखा, सूखा, बेस्वाद भोजन कर या शीत धूप सह कर इन्द्रियों को पीड़ा न दे और न अधिक आराम तलब बने।

सम्पन्न तर मेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते जनाः ।
क्षुत्स्वादुतां जनयति साचाढ्येषु सुदुर्लभाः ॥

(म० भा० उ० ३४।५०)

अन्न का असली स्वाद दरिद्री (मिहनती) पुरुषों को मिला करता है कारण कि क्षुधा अन्न में स्वाद पैदा करती अर्थात् जोर से भूख लगने पर खाने में स्वाद आता है वह स्वाद धनवानों को दुर्लभ है।

कृच्छ्रे ऽप्यपि न तत्कुर्यात्साधूनां यदसम्मतम् ।
जीर्णाशी चहिताशीच मिताशीच सदाभवेत् ॥
(विष्णु धर्मोत्तर पु० ३।२३३।२६५)

सज्जन पुरुषों के विरुद्ध व्यवहार विपत्तिकाल में भी न करे। और हमेशा जीर्णाशी (भूंख लगने पर खाने वाला) मिताशी (अन्दाज का खाने वाला) और हिताशी (जो पदार्थ लाभदायक हों उसको खाने वाला) होवे। इस व्यवहार से इस लोक और परलोक में सुख प्राप्त होता है।

नहि मांसं तृणात् काष्ठादुपलाद्वापि जायते ।
हते जन्तौ भवेन्मांसं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥
(स्कं० पु० ६।२६।१३२)

यह मांस तृण, काष्ठ, और पत्थर से उत्पन्न नहीं होता जीव के मरने पर प्राप्त होता है इसलिये इसको त्याग दे।

सुरामत्स्याः पशोर्मांसंद्विजातीनां बलिस्तथा।
धूर्त्तैः प्रवर्तितं यज्ञेनैतद् वेदेषु कथ्यते ॥
(म० भा० शां० २६५।६)

शराब, मछली, पशु का मांस द्विजातियों में जीव का बलिदान इनको धूर्तों ने यज्ञ में प्रवृत्त किया है वेदों में कहीं नहीं कहा।

यक्ष रक्षपिशा चान्नं मद्यं मांसं सुरासवम् ।
तद् ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवाना मश्नता हविः ॥
(मनु० ११।९६)

मांस मदिरा आदि यक्ष, राक्षस और पिशाचों का भोजन है ब्राह्मण को न खाना चाहिए।

मांस भक्षणमयुक्तं सर्वेषाम् (चाणक्यसूत्र ६।७६)

ना कृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचिद्
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥

(मनु० ५।४८)

प्राणि की हिंसा किये बिना मांस नहीं मिलता और प्राणि का वध स्वर्ग देने वाला नहीं अतः मांस न खाना चाहिये।

देय मार्त्तस्य शयनं स्थित श्रान्तस्य चासनम् ।
तृषितस्य च पानीयं क्षुधितस्य च भोजनम् ॥५४
चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद्वाचं दद्यात्सुभाषितम् ।
उत्थाय चासनं दद्यादेषधर्मः सनातनः ॥५५॥

(म० भा० वन० अ० २)

रोग पीड़ित को शयन के लिये स्थान, थके को आसन, प्यासे को पानी, भूखे को भोजन देना चाहिये। आये हुए को प्रेमदृष्टि से देखे, मन से चाहे, मीठी वाणी से बोले, उठ करके आसन दे यह सनातन धर्म है।

दान मेव कलौयुगे [पराशर० १।२३]

दानमेकं कलौयुगे [मनु० १।८६]

कलियुग में दान ही मुख्य धर्म है।

न्यायार्जित धनं चापि विधिवद्य त्प्रदीयते ।
अर्थिभ्यः श्रद्धयायुक्त दान मेतदुदाहृतम् ॥

ईमानदारी से पैदा किया हुआ पैसा विधिपूर्वक अर्थी (चाहने वाले को) को श्रद्धा के साथ देना—दान है।

विद्या विनय सम्पन्नं ब्राह्मणं गृहमागते ।
क्रीडंत्यौषधः सर्वा यास्यामः परमां गतिम् ।

(व्यास ४।५०)

विद्या विनय से युक्त ब्राह्मण को घर आते देखकर घर का अन्न क्रीड़ा करता है। प्रसन्न होता है। कि हमारी इस सुपात्र के पास पहुंचने पर परम गति होगी।

यद् यद् इष्ट तमं लोके यच्चात्मदयितं भवेत् ।
तद् तद् गुणवते देयं तदे वाक्षयमिच्छता ॥

(दक्षस्मृति० ३।३२)

संसार में जो जो पदार्थ हमें रुचिकर हों वह वह पदार्थ गुणवान् को देना चाहिये।

न्यायेनार्जनमर्थानां वर्द्धनं चाभिरक्षणम् ।
सत्पात्र प्रतिपत्तिश्च सर्वशास्त्रेषु पठ्यते ॥

(मत्स्यपु० २७४।१)

न्यायानुसार द्रव्यका इकट्ठा करना, इकट्ठे किये हुए को बढ़ाना, फिर बढ़े हुए को सुपात्र को दान देना ऐसा सब शास्त्रों का आदेश है।

न्यायार्जितस्य वित्तस्य दानात् सिद्धिः समश्नुते ।

(शिव पु० १३।६५)

न्यायानुसार कमाये हुए वित्त के दान करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

सत्कर्म निरता यापि देयं यत्नेन नारद ।

(नारद पु० १२।१७)

सत्कर्मी के लिये यत्न से देना चाहिये।

मातापित्रो गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणी ।
दीना नाथ विशिष्टेषु दत्तं च सफलं भवेत् ॥
(दक्ष० ३।१६)

माता, पिता, गुरु, मित्र, विनीत, उपकार करने वाला दीन, अनाथ और सदाचारी विद्वान् इनको दिया हुआ दान सफल है ।

सर्वत्रदान्ताः श्रुतिकर्ण पूर्णा जितेन्द्रियाः प्राणि वधे निवृत्ताः । प्रतिग्रहे संकुचिता ग्रहस्तास्ते ब्राह्मणास्तार यितुं समर्थाः ॥ [वसिष्ठ० ६।२२]

सर्वत्र विनयी, वेदपाठी, जितेन्द्रिय, अहिंसक, भिक्षसंगापन से बचे हुए ऐसे ब्राह्मण संसार समुद्र से पार करने को समर्थ हैं ऐसों की धन आदि से सेवा करनी चाहिये ।

इह चत्वारि दानानि प्रोक्तानि परमर्षिभिः ।
विचार्य नाना शास्त्राणि शर्मणोत्र परत्रच ॥२२॥
भीतेभ्य श्चाभयं देयं व्याधितेभ्यस्तथौषधम् ॥
देया विद्यार्थि नां विद्या देयमन्नं क्षुधातुरे ॥२३॥
(शिव पु० रुद्र संहिता खं० ४।५)

इस लोक में बड़े २ ऋषियों ने अनेक शास्त्रों को विचार कर चार दान निश्चित किये जो इस लोक व परलोक में कल्याणदायक हैं । वे चार दान ये हैं कि विपत्तिग्रस्त की विपत्ति छुड़ाना, रोगी को चिकित्सा का दान, विद्यार्थी को विद्यादान भूखे को अन्न का दान देना चाहिये ।

पाखण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकाञ्छठान् ।
हैतुकान्बक वृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥
(मनु० ४।३०)

पाखण्डी—शास्त्र विरुद्ध वेषधारी (जैसे मनुष्य की खोपड़ी) विकर्म स्थान्—निषिद्ध कर्म करने वाले, हैतुकान्—भ्रम पैदा करने वाले, वैडालवृत्ति वाले (जैसे बिल्ली चूहे के घात में ताकती रहती है) और वक वृत्ति वाले (जैसे बगुला मछली पकड़ने को नीचे को दृष्टि करे चुपचाप खड़ा रहता है) का वाणी मात्र से भी आदर न करे।

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःख जीवने ।
मध्वा पातो विषास्वादः सधर्म प्रतिरूपकः ॥

(मनु० ११।९)

जो धनी पुरुष अपने पुरुषों (माता पिता भाई आदि जन) को दुखी देखते हुए औरों को द्रव्य देता है (नाम के लिये) वह शहद पीते हुए अन्त में विष खाने के फल को प्राप्त होता है।

भृत्यानामुपरोधेन यत्करो त्यौर्ध्व देहिकम् ।
तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च ॥१०॥

पुत्र स्त्री इत्यादि को क्लेश दान देकर जो परलोक के लिये दानादि करते हैं वह उभय लोक में दुख देने वाला है।

योऽसाधुभ्योऽर्थ मादाय साधुभ्यः सं प्रयच्छति ।
सकृत्वाप्लव मात्मानं संतार यतिता वुभौ ॥१९॥

जो पुरुष नीच कर्म करने वाले से द्रव्य लेकर सज्जन पुरुषों को देता है वह अपने आत्मा को नौका बनाकर उन दोनों को (जिस से लिया और जिसको दिया) दुख से पार कर देता है।

अव्रताश्चा नधीयाना यत्र भैक्ष्य चराद्विजाः ।
तं ग्रामं दंडयेद् राजा चौरभक्तद दंडवत् ॥
(अत्रि० २२ पराशर० १।६६ वसिष्ठ अ० ३)

जिस ग्राम में अव्रती (ब्राह्मणोचित कर्मों से रहित) ब्राह्मणों का जीवन निर्वाह भिक्षा द्वारा होता है उस ग्रामवासियों को राजा चोर के समान दंड दे ।

विद्वद् भोज्य मविद्वांसोयेषु राष्ट्रेषु भुंजते ।
तेष्वना वृष्टि मिच्छन्ति महद् वाजायते भयम्॥
(वसिष्ठ० ३।२३)

जिस देश में विद्वानों के भोगने योग्य पदार्थों को मूर्ख भोगते हैं वहां अनावृष्टि होती है बड़ी विपत्ति पड़ती है ।

नष्ट शौचे व्रतभ्रष्टे विप्रे वेद विवर्जिते ।
दीयमानं रुदत्यन्नं भयाद् वैदुष्कृतं कृतम् ॥५१॥
(व्यास० ४।५१)

भ्रष्टाचारी, शास्त्र शून्य विप्र को देने पर अन्न रोता है कि मेरा बड़ा दुरुप्रयोग हुआ ।

नास्ति दानात्परं मित्र मिह लोके परत्रच ।
अपात्रे किन्तु यद्दत्तं दहत्या सप्तमं कुलम्
(अत्रि संहिता)

इस लोक और परलोक में दान के बराबर कोई मित्र नहीं परन्तु वह दान यदि कुपात्र को दिया जाता है तो सात पीढ़ी को जलाता है ।

येके चित्पापनिरता निंदिताः स्वजनैः सदा ।
नतेभ्यः प्रतिगृह्णीयान्नन च दद्याद्‌द्विजोत्तम ॥
(नारद पु० १२।१८)

जो पापी हैं, श्रेष्ठ जनों से निन्दित हैं उनसे न तो कुछ ले और न कुछ उनको दे अर्थात् पापियों से असहयोग रखे ॥१८॥

॥ इतिप्रथमोध्याय ॥

अथ द्वितीयोध्याय

नात्मानमव मन्येत पूर्वाभि रसमृद्धिभिः ।
आमृत्योः श्रियमन्विच्छे नैनां मन्येत दुर्लभाम् ।

(मनु० ४।१३७)

प्रयत्न करने पर यदि धन न मिले तो अपने को भाग्य-हीन न समझे मरण पर्यन्त यत्न करता है रहै इस लक्ष्मी को दुर्लभ न समझे ॥

आरंभे तैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः ।
कर्म एभारभमाणांहि पुरुषं श्रीर्निषेवते ॥३००

(मनु० अ० ९)

कर्म करते हुए थका हुआ पुरुष बार बार कर्म करे, कर्म के आरंभ करने वाले को लक्ष्मी प्राप्त हो जाती है ।

उद्योगिनं पुरुष सिंह मुपैतिलक्ष्मी दैवेन देय मिति का पुरुषा वदन्ति । दैवं विलंघ्या कुरु पौरुष मात्मशक्त्या यत्ने कृते यदि नसिध्यति कोऽत्र दोषः । [चाणक्यनीति[

उद्योगी पुरुष सिंह को लक्ष्मी प्राप्त होजाती है "जो कुछ होता है प्रारब्धानुसार होता है" इस प्रकार कायर पुरुष कहा करते हैं। प्रारब्ध को छोड़कर सामर्थ्यानुसार पुरुषार्थ करे यत्न करने पर यदि कार्य सिद्धि न हो तो कोई दोष नहीं।

कोतिभारः समर्थानां किं दूरेव्यवसायिनाम्।
को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम् ॥

(चाणक्य नीति)

सामर्थ्य वालों को कोई कार्य कठिन नहीं व्यापारियों को कोई देश दूर नहीं, विद्वानों को कोई बिदेश नहीं, प्रियवादियों का कोई शत्रु नहीं।

उत्साहवन्तो हि नरान लोके सीदन्ति कर्मस्वति
दुष्करेषु। कुमार संभव

हिम्मत वाले पुरुष कठिन कार्य पड़ने पर नहीं घबड़ावे।

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः।
प्रारभ्य विघ्न निहता विरमन्ति मध्याः ॥
विघ्नै मुंहुर्मुहुरपि प्रतिहन्य माना
प्रारभ्य चोत्तम जना न परित्यजन्ति ॥

(नीतिशतक)

नीची कोटि के पुरुष विघ्न के भय से कार्य का प्रारंभ ही नहीं करते, मध्यम कोटि के पुरुष कार्य प्रारंभ करते हैं परन्तु कुछ ही विघ्न पड़ने पर बीच में ही छोड़ देते हैं उत्तम कोटि के पुरुष बारम्बार विघ्न पड़ने पर भी पूरा किये बिना नहीं छोड़ते।

नक्षत्रमति पृच्छन्तं बालमर्थोऽतिवर्तते ।
अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किंकरिष्यन्ति तारकाः ॥

(कौ० अ० शा० ६।५।३७)

नक्षत्र (मुहूर्त्त) की अधिक पूछताछ करने वाले का अर्थ (प्रयोजन-कार्य) नष्ट हो जाता है, अर्थ ही अर्थ का नक्षत्र है ये तारे क्या करेंगे ।

नारमान मवसन्येत० इस मनुवचन (४।१३७) की मेधा तिथि कृत टीका में एक वचन लिखा है —

हीनाः पुरुषकारेण गणयन्ति गृहस्थितिम् ।
सत्वोद्यम समर्थानां नासाध्यं व्यवसायिनाम् ॥

अर्थात् पुरुषार्थ से हीन पुरुष गृह दशा दिखाया करता है सामर्थ्यवान् उद्योगी पुरुषों को कोई भी कार्य असाध्य नहीं ।

साहसे खलु श्रीर्वसति (चाणक्य सूत्र २।५०)

उद्योगी पुरुष के यहाँ लक्ष्मी का निवास रहता है ।

धिग् जीवितं योद्यम वर्जितस्य ।

(स्कं० पु० ४।१।६५)

उद्यम हीन का जीवन धिक्कार है ।

जीवन्मृतः कस्तु निरुद्यमोयः ।

(प्रश्नोत्तर मणिमाला)

जो निरुद्यमी है वह जीता हुआ ही मरे में शुमार है ।

अनौकं पौरुषंयत्नं वर्जयित्वे तरागतिः ।
सर्वं दुखक्षये प्राप्तौ न काचिदुपजायेते ॥

(योग वासिष्ठ ३।६।१४)

इस संसार में सब दुखों का क्षय करने के लिए पुरुषार्थ

के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं।

न तदस्ति जगत्कोशे शुभकर्मानुपातिना ।
यत्पौरुषेण शुद्धेन न समासाद्यते जनैः ॥

(२।८।२८)

संसार रूपी कोश में ऐसा कोई रत्न नहीं जो शुद्ध पुरुषार्थ से किये हुए शुभ कर्म द्वारा न प्राप्त हो सके।

कः केन हन्यते जन्तुर्जन्तुः कः केन रक्ष्यते ।
हन्ति रक्षति चैवात्मा ह्यसत्साधु समाचरन् ॥

(वि० पु० १८।१३)

कौन किसको मारता है ? कौन किसकी रक्षा करता है ? यह जीव ही बुरा भला आचरण करता हुआ अपने को मारता है रक्षा करता है।

शुभ कृच्छुभमाप्नोति पाप कृत्पापमश्नुते ।
विभीषणः सुखं प्राप्तस्त्वं प्राप्तः पाप मीदृशम्

(वा० रा० यु० ११४।२६)

शुभ कर्म करने वाला शुभ (सुख) को प्राप्त करता है पाप कर्म करने वाला पाप (दुःख) को प्राप्त होता है। देखो विभीषण को सुख प्राप्त हुआ है और तुमको ऐसा दुःख (कंकरीली जमीन पर पड़े हो) प्राप्त हुआ। यह वचन मरते समय रावण से मन्दोदरी ने कहा है।

सुख दुःख दोन चान्योऽस्ति यतः स्वकृत भुक्
पुमान् [भा० १०।५४।३८]

सुख दुःख देने वाला और कोई नहीं मनुष्य अपने किये हुए कर्मों के फल भोगता है।

उद्यमी नीति कुशलो धर्म युक्तः प्रियंवदः
गुरु पूजा रतो यत्र तस्मिन्नैव वसाम्यहम् ॥

(कार्तिक माहात्म्य)

दरिद्रता देवी कहती है कि जिस घर में परिश्रमी, नीति निपुण, धर्मात्मा, प्रिय वचनवादी, और बड़ों की सेवा करने वालों का निवास है उस घर में मैं नहीं रहती।

रात्रौदिवा गृहे यस्मिन् दम्पत्योकलहोभवेत्।
निराशा यान्त्य तिथयस्तस्मिन् स्थानेरतिर्मम ॥

जिस घर में दिन रात स्त्री पुरुष में कलह रहती है आये हुए महानुभावों का सत्कार नहीं होता उस स्थान में मेरा (दरिद्रता का) निवास रहता है।

(कार्तिक महात्म्य)

वसामि नित्यं शुभगे प्रगल्भे दक्षेनरे कर्मणिवर्तमाने।
अक्रोधने देवपरे कृतज्ञे जितेन्द्रिये नित्य मुदीर्ण सत्वे ॥

(म० भा० अनुशा० ११।६)

लक्ष्मी देवी का कहना है कि जो पुरुष बोलने में चतुर कर्त्तव्य कर्म में लगे हुए, क्रोध रहित, श्रेष्ठों के उपासक, उपकार के मानने वाले, जितेन्द्रिय और पराक्रमी हैं उनके यहां मेरा निवास रहता है।

पित्रो पात्ता श्रियं भुंक्ते पित्राकृच्छ्रात्समुद्धृत।
विज्ञायतेच यः पित्रा मानवः सोऽस्तुनोकुले ॥

(मार्कण्डेय पु० १२५।२६)

पिता के पैदा किये द्रव्य को भोगने वाला, पिता केद्वारा विपत्ति से छूटने वाला (ऐसा काम कर के वह) जो पिता

को निपटेरा करना पड़ता है। पिता के नाम से जिसका परिचय दिया जाता है ऐसा पुरुष हमारे कुल में पैदा न हो।

स्वयमार्जित वित्तानां ख्यातिं स्वयमुपेयुषाम्।

स्वयं विस्तीर्ण कृच्छ्राणां यागतिः सास्तुमेगतिः ॥३०॥

स्वयं वित्तोपार्जित करने वाले, स्वयं नाम पदा करने वाले, स्वयं विपत्ति से छूटने वाले पुरुषों की जो सद्गति होती है, हे प्रभु वह मेरी गति हो।

को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः कोवा विदेश स्तथा।
यंदेशं श्रयते तमेवकुरुते बाहु प्रता पार्जितम्।
यद् दंष्ट्रा नखलांगल प्रहरणः सिंहो वनं गाहते,
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्र रुधिरै स्तृष्णां छिनत्यात्मनः ॥

(सुभाषितरत्नभाण्डागार)

वीर और धीर पुरुष को स्वदेश और विदेश कुछ नहीं, जिस जगह पहुंच जाते हैं वहीं अपने पराक्रम से सब कुछ कर दिखाते हैं। दंत, नख, पुच्छ से काम लेने वाला सिंह जिस वन में पहुंच जाता है उसी में मारे हुए हाथी के खून से अपनी प्यास बुझा लेता है ॥

न दैव प्रमाणा नां कार्य सिद्धिः [चाणाक्यसूत्र २।२६]

दैव (प्रारब्ध) के भरोसे रहने वालों की कार्य सिद्धि नहीं होती।

निरुत्साहो दैवं शपति [चाणाक्य सूत्र]

निरुद्यमी मनुष्य दैव को दोष देता है।

अकृत्वा मानुषं कर्म यो दैव मनु वर्तते।
वृथा श्राम्यति सम्प्राप्य पतिं क्लीबमिवाङ्गना ॥

[म० भा० अनुशा० ६।२०]

पुरुषार्थ करके जो दैव के भरोसे से रहता है वह जग में पछताता है जैसे नपुंसक पति को प्राप्त कर स्त्री।

ये समुद्योग मुत्सृज्य स्थितादैव परायणाः।
ते धर्ममर्थं कामं च नाशयन्त्यात्मविद्विषः॥

(योग वासिष्ठ २।७।३)

जो उद्योग को छोड़कर दैव का भरोसा करते हैं वे अपने ही दुश्मन हैं। और धर्म, अर्थ, काम सबको नष्ट कर देते हैं।

गुरुश्चेदुद्धरत्यज्ञ मात्मीयात्पौरुषादृते।
उष्ट्रं दान्तं बलीवर्दं तत्कस्मान्नोद्धरत्यसौ॥

(योग वासिष्ठ २।४३।१६)

यदि गुरु किसी व्यक्ति का उसके अपने पुरुषार्थ के बिना ही उद्धार कर सकते हैं तो वे ऊँट हाथी बैल का उद्धार क्यों नहीं कर देते।

॥ इति द्वितीयोऽध्याय ॥

अथ तृतीयोऽध्याय

धर्मार्थ काम मोक्षाणा मारोग्यं मूलमुत्तमम् ॥१४॥

आरोग्यता ही धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष की उत्तम जड़ है। (चरक श्लोक स्थान)

वृत्युपायान् निषेवेत येस्युधर्मा विरोधिनः॥
शम मध्ययनं चैव सुख मेवं समश्नुते॥ ५।१०३॥

धर्म के अविरोधी जीविका के जो उपाय हैं उनका सेवन

न करे मन का बुरे विषयों से हटाना, सद्ग्रन्थों का अध्ययन इस प्रकार से सुखको प्राप्त करता है।

कालेहित मितमधुरार्थं वादी [८।२२]

समय पर, हितकारी, मर्यादित, मधुर शब्दों में सार्थक बोले।

सर्वं मन्यत्परित्यज्य शरीरं मनुपालयेत्।
तद् भावेहि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्॥

(चरक—निदानस्थान ६।११)

अन्य सब विषयों को छोड़कर शरीर की रक्षा करे शरीर सुरक्षित न होने पर शरीर धारियों के सारे भावों का अभाव हो जाता है।

नित्यं हिताहार विहार सेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोप सेवीचभवत्यरोगः॥

(२।४६)

नित्य हित कर आहार (भोजन) विहार (शारीरिक परिश्रम) करने वाला, विषयों में अनासक्त, सोच समझ कर करने वाला, दानी, रागद्वेष रहित, सत्यवादी, क्षमाशील, सदाचारी विद्वानों का उपासक पुरुष, रोग से निर्मुक्त रहता है।

सत्यवादी, अक्रोधी, मद्य और मैथुन से बचा हुआ, अहिंसक, परिश्रमी, शान्तचित्त, प्रियवादी, यज्ञकर्त्ता, पवित्रता परायण, धीर, दानकर्त्ता, तपस्वी, गो देवता ब्राह्मण आचार्य गुरु वृद्ध इनकी सेवा में परायण, निष्ठुरता रहित, दयापरायण, उचित काल में जागने सोने वाले, नित्य प्रति दूध घी खाने वाले देशकाल के प्रमाण का जानने वाला, युक्तिज्ञ, अहंकार रहित, सदाचारी, एक धर्मावलंबी, अध्यात्मज्ञानवेत्ता, वृद्धों का

सेवक, आस्तिक, जितेन्द्रियों का उपासक, धर्मशास्त्र परायण पुरुष यद्यपि रसायन सेवन न करे तो भी रसायन सेवन का फल प्राप्त करता है।

(चरक—चिकित्सास्थान १।४)

त्रिवर्गं शून्यं नारंभं भजेत्तं चाविरोधयन्।

(२।३०)

कोई भी कार्य हो परन्तु त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) से शून्य न होया तो धर्म प्राप्त हो या अर्थ प्राप्त होया इन्द्रियों का भोग ही प्राप्त हो जिस कार्य से इन तीनों में से कोई न हो तो उसको न करे।

आर्द्र संतानता त्याग काय वाक् चेतसांदमः।
स्वार्थ बुद्धि परार्थेषु पर्याप्त मितिसद् व्रतम्॥

(२।४६)

कोमलता—कृपा का बर्ताव, उदारता, शरीर, वाणी, मनको पाप कर्मों से बचना, पुण्य कार्यों को अपने ही समझकर उनके बनाने का प्रयत्न करना, इतना सदाचार काफी है।

आहार शयनाऽ ब्रह्मचर्यैं युक्त्या प्रयोजितैः।
शरीरं धार्यं ते नित्य मागार मिवधारणैः। [७।५२]

आहार, नींद, मैथुन ये तीन बातें शरीर के धारण में कारण हैं, जैसे खम्भे मकान को धारण किये रहते हैं।

सत्यवादिन मक्रोध मध्यात्म प्रवणेन्द्रियम्।
शान्तं सद्वृत्त निरतं विद्यान्नित्यं रसायनम्॥

(उत्तरस्थान ३९।१७९)

सत्यवादी, अक्रोधी, जितेन्द्रिय, शान्तचित्त, सदाचारी ऐसे लक्षण वाला पुरुष नित्य ही मानों रसायन सेवन करता है।

यथा खर चन्दन भारवाही भारस्य वेत्तानतु चन्दनस्य ।
एवंहि शास्त्राणि बहून्यधीत्य चार्थेषु मूढाः खर वद् वहन्ति॥

(सुश्रुत सूत्र स्थान ४।४)

जैसे गधे पर चन्दन लदा हो तो वह उसको बोझ ही समझता है चन्दन नहीं समझता । इसी प्रकार बहुत से शास्त्र पढ़ लिये पर वास्तविक अर्थ नहीं समझा वो गधे के समान है ।

ईर्ष्या भय क्रोध परिक्षतेन लुब्धेन शुग् दैन्य निपीड़ितेन ।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमान मन्नं न सम्यक् परिपाक मेति॥

(४६।५०१)

डाह (जलन) भय, क्रोध से युक्त अन्य की बढ़ती देखकर दुखी, लोभी, चिन्तित, दीनतायुक्त द्वेषी ऐसे पुरुष को खाया हुआ अन्न भले प्रकार नहीं पचता ।

नोद्धत वेषधरः स्यात् । [चाणक्य नीति १।६६]

विचित्र वेष न धारण करे जिसे देखकर लोग अंगुली उठाने लगें । अर्थात् सादगी में रहे ।

नव्यसन परस्य कार्या वाप्तिः ॥६८॥

व्यसनी का कार्य सिद्ध नहीं होता ।

इन्द्रिय वशवर्ति नो नास्तिकार्या वाप्ति ॥६६॥

जो इन्द्रियों के गुलाम हैं इनके कार्य की सिद्धि नहीं होती ।

भाग्यावन्त मपि अपरीक्ष्य कारिणं श्रीः परित्यजति

(२।२४)

बिना विचारे कार्य करने वाले भाग्यवान् का भी लक्ष्मी साथ छोड़ देती है ।

यः संसदि परदोषं वक्ति स स्व दोष बहुत्वं प्रख्यापयति। (२।४७)

जो सभा में दूसरे के दोष कहता है वह मानो अपने दोषों को बहुत करके प्रगट करता है।

कदाचिदपि चारित्रं न लंघयेत् ॥२।६३॥

किसी काल में भी सदाचार का उल्लंघन न करे।

शत्रुं जयति सुव्रतः ॥२।१०३॥

सदाचारी शत्रु को जीत लेता है।

लोके प्रशस्तः समतिमान् ॥३।३२॥

लोक में जिसकी सत्कीर्ति है वह बुद्धिमान् है।

मातापि दुष्टात्याक्तव्या ॥४०॥

दुष्टा माता का भी त्याग कर देना चाहिए फिर और की तो बात ही क्या है।

यशः शरीरं नविनश्यति ॥४।८॥

यश रूपी शरीर कभी नष्ट नहीं होता।

म्लेच्छा ना मपि सुवृत्तंग्राह्यम् ।१४॥

म्लेच्छों से भी सुन्दर चरित्र सीख लेना चाहिये।

अयशोभयं भयेषु ॥२५॥

भयों में बड़ा भय बदनामी है।

सर्वेषां भूषणं धर्मः ॥७६॥

सबसे बड़ा आभूषण धर्म है।

जिह्वायत्तौ वृद्धि विनाशौ

वृद्धि और विनाश जिह्वा के आधीन है।

॥ इतिश्री चाणक्य ॥

अथ चतुर्थोध्याय

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्न मातिष्ठेद् विद्वान् यन्ते वयाजिनाम् ॥

(मनु० २।८८)

जिस प्रकार सारथी अपने रथ के घोड़ों को वश में रखता है वैसे ही विद्वान् विषयों में दौड़ने वाली इन्द्रियों का यत्न पूर्वक वश में रखे ।

न जातु कामः कामानामुप भोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥

(मनु० २।९४)

कभी इच्छा विषयों के उपभोग से शान्त नहीं होती भोगने से इस प्रकार बढ़ती है कि जैसे घृत की आहुति से अग्नि।

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसिच ।
न विप्र दुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

(मनु० २।९७)

वेद, त्याग, यज्ञ, नियम और तप यह सब भी दुष्ट भाव वाले विषयी मनुष्य कदापि सिद्धि नहीं देते ॥

वशे कृत्वेन्द्रिय ग्रामं संयम्य च मनस्तथा ।
सर्वान् संसाधयेदर्थान क्षिण्वन्योगतस्तनुम् ॥

(मनु० २।१००)

इन्द्रियों को वश में करके मन को रोककर शरीर को पीड़ा न देकर सम्पूर्ण अर्थों (प्रयोजनों) को सिद्ध करे ॥

दशकामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च ।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥
(मनु० ७।४५)

दश प्रकार का कामज और आठ प्रकार का क्रोधज यह १८ प्रकार का व्यसन है इन दुरन्त (परिणाम में हानिकारक) व्यसनों को यत्न पूर्वक त्याग देवे ।

मृगया क्षोदिवास्वप्नः परि वादः स्त्रियोमदः ।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥४७॥

शिकार खेलना, जूआ—दिनका सोना—निन्दा—स्त्रियों में अधिक आसक्ति,—शराब आदि का नशा—नाच-गाना—अधिकता—वृथा भ्रमण, ये १० कामज व्यसन हैं।

पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्याऽसूयार्थ दूषणम् ।
वाग्दण्डजञ्च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोष्टकः ॥४८॥

चुगलखोरी, उतावलपन से काम करना, द्रोह (दूसरे का अनिष्ट चिन्तन) ईर्ष्या (किसी की बढ़ती देखकर जलन पैदा होना) असूया (किसीके गुण में दोष लगाना) किसीके धन को हर लेना, वाणी और दंड की कठोरता ये ८ क्रोध से उत्पन्न होने वाले व्यसन हैं ।

व्यसनस्यच मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ।
व्यसन योऽधो व्रजति स्वर्यात्य व्यसनी मृतः॥५३॥

व्यसन और मृत्यु के बीच में व्यसन अत्यन्त दुखदाई कहा है व्यसनी मरकर नीचे नरक जाता है और अव्यसनी स्वर्ग प्राप्त करता है ।

व्यस्यत्ये नं श्रेयसइति व्यसनम् ॥
(कौटिल्य अर्थ शास्त्र ८।१।१२)

व्यसन मनुष्य को कल्याण के रास्ते से जो गिरा देता है।

सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः ।
दंडस्य हि भयात्सर्वं जगद् भोगाय कल्पते ॥

(मनु० ७।२२)

दण्ड से जीता हुआ सारा जगत् सम्मार्ग में स्थित रहता है क्योंकि स्वभाव से शुद्ध मनुष्य दुर्लभ है और दण्ड के भय से सारा संसार वस्तुओं को मर्यादा में भोगने में समर्थ होता है ॥

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥२०१॥

सतयुग त्रेता द्वापर कलियुग ये चार युग राजा की चेष्टा बर्ताव है राजा से ही सत्य आदि युगों की प्रवृत्ति होती है इसलिये राजा को युग कहते हैं।

कालोवा कारणं राज्ञो राजावा काल कारणम् ।
इतिते संशयो माभूत् राजा कालस्य कारणम् ॥

(म० भा० शां० ६९।७९)

समय राजा का कारण है या राजा समय का कारण है यह संशय तुम मत करो। राजा ही युग समय का कारण है। श्री रामचन्द्र के राज्य में त्रेता की जगह सतयुग होगया।

योऽनित्ये न शरीरेण सतां गेयं यशोध्रुवम् ।
नाचिनोति स्वयं कल्पः सवाच्य शोच्यएवसः ॥

(भा० १०।७२।२०)

सज्जन जिसकी सराहना करें ऐसे यश को समर्थ होते हुए भी जो पुरुष इस अनित्य शरीर द्वारा इकट्ठा नहीं करता वह शोचने योग्य और निन्दनीय है।

कीर्तिं हि पुरुषं लोके संजीवयति मातृवत् ।
अकीर्तिं जीवितंहन्ति जीवन्तोऽपि शरीरिणः ॥

(म० भा० वन० २९९।३१)

कीर्ति पुरुष को माता के समान जिलाती है बदनामी जिन्दे को ही मार देती है ।

तीर्थे स्नानार्थिनी नारी पतिपा दोदकं पिवेत् ।
शंकर स्यापि विष्णोर्वा प्रयातिपरमं पदम् ॥

(वसिष्ठ० ३।१३५)

तीर्थ स्नान की इच्छा करने वाली स्त्री अपने पति के चरणोदक का आचमन करे तो शंकर या विष्णु के लोक को प्राप्त होती है ।

सुवेषं या नरं दृष्टा भ्रातरं पितरं सुतम् ।
मन्यते चपरं साध्वी साचभार्या पतिव्रता ॥

(पद्म पु० १।५०।५९)

जो सुन्दर पुरुषों को भ्राता, पिता या पुत्र की दृष्टि से देखती है वह स्त्री पतिव्रता है ।

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नविविक्तासनोभवेत् ।
बलवानिन्द्रिय ग्रामो विद्वांसमपिकर्षति ॥

(मनु० २।२१५)

माता बहिन लड़की इनके भी साथ एकान्त में न बैठे क्योंकि बलवान् इन्द्रियों का समूह विद्वानों को भी वश में कर लेता है ॥

न जीर्ण मल वद् वासा भवेच विभवेसति ॥

(मनु० ४।३४)

धन रहते हुये कभी पुराने और मैले वस्त्र धारण न करे।

हीनाङ्गानति रिक्ताङ्गान् विद्याहीनान् वयोधिकान्
रूपद्रव्य विहीनांश्च जाति हीनांश्च नाक्षिपेत् ॥

(मनु० ४।१४१)

हीन अंग वाले अधिक अंग वाले विद्याहीन अवस्था में बूढ़े कुरूप और निर्धन तथा जाति हीन वालों का उपहास न करे।

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा तंद्रा भयं क्रोधं आलस्यं दीर्घ सूत्रता ॥

(म० भा० उद्यो० ३३।७८)

इस संसार में उन्नति चाहने वाले पुरुष को छः दोष त्याग कर देने चाहिए। अधिक नींद, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और लापरवाही।

कोषेन धर्म कामश्च परलोक स्तथा ह्ययम् ।
सं चधर्मेण लिप्सेत ना धर्मेण कदाचन ॥

(म० भा० शां० १३०।५०)

द्रव्य से धर्म और काम की प्राप्ति होती है यह लोक और परलोक बनता है परन्तु उस धन को धर्म (न्याय) के द्वारा पैदा करे अधर्म के द्वारा कदापि नहीं।

अकृत्वा पर संताप मगत्वा खल मन्दिरम् ।
अनुल्लङ्घ्य सतांवर्त्म यत्स्वल्पमपितद्बहु ॥

(सुभाषित रत्न भांडागार)

किसी को दुख न देकर, नीचों के गृह न जाकर, सज्जनों का मार्ग न त्यागकर, जो थोड़ा भी मिले वह बहुत है।

वरं दारिद्र्य मन्याय प्रभवाद् विभवादिह ।
कृशता भिमता देहे पीनता न तुषोफतः ॥

(सुभाषित रत्न भांडागार)

अन्याय से पैदा किये द्रव्य से दरिद्र अवस्था में रहना अच्छा किसी बीमारी से फूल जाने की अपेक्षा शरीर का पतला-दुबला होना अच्छा है ।

वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ।
वेष वाग् बुद्धि सारूप्य माचरन् विचरेदिह ॥

(मनु० ४।१८)

अवस्था, कर्म, धन, वेद, कुल इनके अनुरूप वेष, वाणी, बुद्धि करता हुआ विचार करे ।

बुद्धि वृद्धि करा एयाशु धन्यानि हितानिच ।
नित्यं शास्त्राण्य वेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान्

(मनु० ४।१९)

शीघ्र बुद्धि को बढ़ाने वाले, धन देने वाले, हित करने वाले, शास्त्र का अध्ययन करे । ज्ञान के तत्व का नित्य विचार किया करे ।

अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्धएवसः ॥

(चाणक्यनीति)

अनेक संशय को छेदन करने वाला, परोक्ष अर्थ को दिखाने वाला और सबका नेत्र, शास्त्र है जिसके यह शास्त्ररूप नेत्र नहीं वह अन्धा है ॥

यदहर ब्राह्मणो भवति यदहः स्वाध्यायं नाधीते ।
तस्मात्स्वाध्यायोऽध्येतव्यः ॥

(शतपथ ११।५।७)

उसी दिन वह ब्राह्मण अब्राह्मण हो जाता है अर्थात् ब्राह्मत्व से गिर जाता है जिस दिन स्वाध्याय नहीं करता। भगवद् गीता में स्वाध्याय को वाणी का तप माना है (देखो अ० १७ श्लो० १५)

षट् पदः पुष्प मध्यस्थो यथासारं समुद्धरेत् ।
तथा सर्वेषु शास्त्रेषु सारं गृह्णन्ति पंडिताः ॥

(सुभाषित रत्न भांडागार)

भौंरा पुष्प में से सार सार ले लेता है उसी प्रकार चतुर पुरुष सब शास्त्रों में से सार सार ले ले ।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥

(मनु० ४।१३८)

सत्य बोले, और प्रिय बोले अप्रिय सत्य न कहे । मिथ्या प्रिय न कहे यह सनातन धर्म है ॥

अजरामर वत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्म माचरेत ॥

अपने को अजर अमर समझता हुआ विद्या और अर्थ का संग्रह करे । मौत से ग्रसा हुआ समझकर धर्म का संग्रह करे।

न यमं यममित्याहु रात्मावै याम उच्यते ।
आत्मा संयमितो येनतं यमः किंकरिष्यति ॥

(आपस्तम्ब २।७।२)

यमराज यमराज नहीं, अपना आत्मा ही यमराज है जिसने अपने आत्मा (मन) को काबू में कर लिया अर्थात् बुरे विषयों से हटा लिया उसका वह यमराज क्या करेगा।

येन केन चिद्धर्मेण मृदुनादारुणेन च।
उद्धरेद्दीन मात्मान समर्थो धर्म माचरेत् ॥

(पराशर० ७।४२)

विपत्ति में कठिन या नरम जिस किसी धर्म से गिरी हुई स्थिति से उद्धार करले। समर्थ होकर फिर धर्म का आचरण करे।

कामः क्रोधो भयोहर्षं लोभोदर्पस्तथैवच।
रिपवः षड् विजेतव्याः पुरुषेण विपश्चिता ॥

(विष्णु धर्मोत्तर पु० ३।२३३।२५७)

काम, क्रोध, भय, हर्ष (अधिक हर्ष में धर्माधर्म का विचार नहीं रहता) लोभ, दर्प, विद्वानों को इन छः वैरियों को जीतना चाहिए।

॥ इतिचतुर्थोध्याय ॥

अथपंचमोऽध्याय

नहायनैर्न पलितैर्न वित्तेन नबन्धुभिः।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः सनोमहान् ॥

(मनु० २।१५४)

न अधिक वर्षों से, न सफेद बालों से, न धन और बन्धुओं से कोई बड़ा होता है। ऋषियों ने ऐसा माना है कि जो ज्ञान वान है वही बड़ा है।

विप्राणां ज्ञानतो ज्येष्ठं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः ।
वैश्यानां धान्य धनतः शूद्राणा मेवजन्मतः ॥५५

ब्राह्मणों में ज्ञान से, क्षत्रियों में बल से, वैश्यों में धन धान्य से और शूद्रों में जन्म से श्रेष्ठता होती है।

यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग् गुप्ते च सर्वदा ।
सवै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ॥
(मनु० २।१६०)

जिसके मन और वाणी सुरक्षित और शुद्ध हैं अर्थात् ईर्ष्या द्रोह आदि से रहित मन है अनृत चुगलखोरी रूखेपन से रहित वाणी है वही वेदान्त के फल को प्राप्त होता है।

यं माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्त्तुं वर्षशतैरपि ॥२।२२७

माता पिता जो क्लेश मनुष्य की उत्पत्तिमें सहन करतेहैं उसका बदला संतान सदा चुकाती रहे तो उसका चुकना कठिनहै।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।
यत्रै तास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रा फलाः क्रिया ॥३।५६

जहां स्त्रियों का आदर सत्कार होता है वहां देवता रमण करते हैं और जहां इनका अनादर होता है वहां की सम्पूर्ण क्रियाएं निष्फल होजाती हैं।

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
नशोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥५७॥

जिस कुल में स्त्रियां दुख पाती हैं उसका शीघ्र ही नाश होजाता है और जिस कुल में वह सुखी रहती हैं वहां सदा धनादि की वृद्धि होती है।

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता ।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥३।१०१

चटाई आदि बिछौना, ठहरने के लिये भूमि, जल, सत्य और प्रिय वाणी ये सज्जनों के ग्रह से कभी दूर नहीं होते अर्थात् इन वस्तुओं के द्वारा अतिथियों का सत्कार होता रहता है।

उपासतेये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः ।
तेनते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादि दायिनाम् ॥१०४

अच्छा भोजन मिलेगा इस लोभ से जो दूसरे अतिथि बनते हैं वह मरने पर अन्नदाताओं के पशु बनते हैं।

न हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते ।
यादृशं पुरुषस्येह परदारो पसेवनम् ॥४।१३४

पर स्त्री सेवन के समान दूसरा काम इस संसार में मनुष्य की आयु कम करने वाला नहीं है।

अधार्मिक नरोयोहि यस्य चाप्यनृतं धनम् ।
हिंसा रतश्च यो नित्यं नेहासौ सुख मेधते ॥४।१७०

जो अधर्मी हैं जिनका मिथ्या भाषण ही धन है जिसकी रुचि सदैव हिंसा में ही रहती है उसको संसार में सुख नहीं मिलता ॥

अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्या पचारिणी ।
गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम् ॥
(८।३१७)

जो ब्रह्म हत्या करने वाले का अन्न खाता है वह उसके पाप का भागी होता है, स्त्री के पाप का भागी उसका पति होता

है शिष्य के किये पाप को उसका गुरु भुगतता है चोर के पाप को राजा भुगतता है।

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तुसः ॥११।२३०

मनुष्य पाप करके फिर सच्चे दिल से पछताने से और मैं फिर ऐसा न करूंगा ऐसा कहने से निवृत्ति रूप संकल्प करने से उस पाप से छूट जाता है।

ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्यरक्षणम् ।
वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥
(११।२३५)

ज्ञान होना यह ब्राह्मण का तप है रक्षा करना यह क्षत्रिय का तप है खेती वाणिज्य पशुपालन यह वैश्य का तप है सेवा करना यह शूद्रों का तप है।

मूर्खा यत्र न पूज्यन्ते धान्यं यत्र सुसंचितम् ।
दम्पत्योः कलहो नास्ति तत्र श्रीः स्वयमागता ॥
(चाणक्य नीति)

मूर्खों का जहां आदर नहीं होता जहां अन्न का संग्रह रहता है स्त्री पुरुषों में जहां कलह नहीं होता वहां लक्ष्मी स्वयं आती है ॥

प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम् ।
तृतीये नार्जितं पुण्यं चतुर्थे किंकरिष्यति ॥
(चाणक्य नीति)

बाल्यअवस्था में विद्या नहीं पढ़ी जवानी में धन प्राप्त नहीं किया, वृद्धा अवस्था में धर्म प्राप्त नहीं किया तो मरने के समय क्या करेगा?

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।
मनस्यन्यद् वचस्यन्यद् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ॥

(चाणक्य नीति)

महात्माओं के मन वाणी शरीर में एक बात होती है अर्थात् जो बात मन में है वही वाणी से कहेंगे और उसी को करेंगे। दुष्टों के मन में कुछ और वाणी में कुछ और करने में कुछ और ही।

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत्सर्व भूतेषु, यः पश्यति स पंडित ॥

(चाणक्य नीति)

पराई स्त्रियों को माता की दृष्टि से पराये धन को मिट्टी के समान सब जीवों को अपने समान जो देखता है वह पंडित है।

कः कालः कानि मित्राणि को देशः कोऽव्ययागमौ।
कस्याहं काचमे शक्ति रिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ॥

(चाणक्य नीति)

समय कैसा है मेरे मित्र कौन २ हैं देश कैसा है आमदनी और खर्च कितना है मैं किसका हूँ मेरी सामर्थ्य कैसी है इस प्रकार बार बार विचार करे।

संतप्ता यसि संस्थितस्यपयसो नामापि नज्ञायते।
मुक्ताकार तयातदेव नलिनी पत्र स्थितं राजते।
अन्तः सागर शुक्ति मध्य पतितं तन्मौक्तिकं जायते।
प्रायेणाधम मध्यमोत्तम गुणाः संसर्ग तो जायते ॥

(भर्तृहरि नीतिशतक)

गरम तवे पर जल की बूंद यदि छोड़ो तो नाम निशान नहीं रहता वही जल की बूंद यदि कमल के पत्ते पर छोड़ो तो मोतीसा हो जाता है वही जल की बूंद यदि समुद्र के बीच सीप में पड़ जाय तो साक्षात सच्चा मोती होजाता है इससे सिद्ध होता है कि प्राय करके अधम मध्यम उत्तम गुण संसर्ग से होते हैं।

इन्द्रियाणि वशी कृत्य गृह एव वसेन्नरः।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च॥
(व्यास० ४।१३)

इन्द्रियों को बुरे विषयों से रोककर घर में रहे तो वही उसका कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्कर आदि तीर्थ हैं।

सुखं वा यदि वा दुखं यत् किंचित् क्रियतेपरे।
यत्कृतंतुपुनः पश्चात् सर्व मात्मनि तद्भवेत्॥
(दक्ष० ३।२२)

जो सुख दुख दूसरे के लिये किया जाता है वह पीछे करके अपने ऊपर पड़ता है॥

गंगादि पुण्य तीर्थेषु योनरः स्नाति सर्वदा।
यः करोति सतां संगं तयोः सत्संगमो वरः॥
(पद्म पु० आदि कंड २३।६)

गंगादि पुण्य तीर्थों में स्नान करना और सत्पुरुषों का संग करना इसमें सत्संग श्रेष्ठ है।

साक्षरा विपरीताश्च राक्षसा स्त इतिस्मृताः।
तस्माद्धै विपरीतं च कर्म नैवा चरेद्बुधः॥
(शिव पु० विद्येश्वर संहिता ६।२१।२५)

यदि साक्षर विद्वान् होकर विपरीत चले तो वह राक्षस है (साक्षरा को उलटा पढ़ो तो राक्षसा हो जायगा) तिस्कारण बुद्धिमान् को विपरीत आचरण न करना चाहिए।

श्रुति स्मृति श्चेतिहासाः पुराणं च शिवात्मज।
प्रमाणं चेत्ततो दुष्ट वधेदोषो न विद्यते॥
(स्कन्द पु० १।२।३३।११)

श्रुति स्मृति इतिहास पुराण यदि इनको प्रमाण माना जाता है तो दुष्ट के वध में दोष नहीं।

परद्रोह धियो ये च परेर्ष्या कारिणश्चये।
परोपतापिनो येन्नै तेषां काशी न सिद्धये॥
(वीर मित्रोदय—तीर्थ प्रकाश)

दूसरे के अनिष्ट चिन्तन वाले, दूसरे की बढ़ती को देखकर कुढ़ने वाले, दूसरे को दुखदायी, ऐसे पुरुषों का काशी वास सिद्धि का देने वाला नहीं।

परदार परद्रव्य परद्रोह पराङ् मुखः।
गंगा ब्रूते कदागत्य मामयं पावयिष्यति॥
(जयसिंह कल्पद्रुम)

पराई स्त्री, पराये धन, पर निन्दा से जो बचा है गंगा महारानी कहती हैं कि ऐसा पुरुष आकर मुझे कब पवित्र करेगा।

मर्त्यावतार स्त्विह मर्त्य शिक्षणं रक्षो वधायैव न केवलं विभो। [भा० ५।१९।५]

श्री रामचन्द्र जी का जो अवतार है वह केवल रावण के मारने के लिये नहीं वरन् मनुष्यों के शिक्षा के लिये है। अर्थात

श्रीरामचन्द्रजी ने भरत आदि के साथ जो व्यवहार किया है वह हम सबों को करना चाहिए।

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च ।
पंचधाविभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते ॥

(भा० ८।१९।३७)

धर्म के निमित्त, यश के लिये, बढ़ाने के निमित्त, अपने शरीर के आराम के लिए, और स्वजनों की सहायता के लिए इस प्रकार पांच प्रकार से द्रव्य खर्च करता हुआ इस लोक और परलोक में सुख पाता है।

पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदोह्यनु भावितः ।
न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते ॥

(भा० १०।५।२८)

स्वजनों को आराम देते हुए धर्म अर्थ काम सेवन ठीक है स्वजनों के क्लेश भोगते हुए त्रिवर्ग सुख कारक नहीं।

माताप्ता जनको वापि भ्राता वा तनयोऽपिवा।
अधर्मं कुरुते यस्तु सएव रिपुरिष्यते ॥

(नारद पु० ८।१५)

माता पिता भ्राता पुत्र भी यदि अधर्मी हैं तो वैरी समझना चाहिये।

ये पापानि न कुर्वन्ति मनोवाक् कर्मबुद्धिभिः।
ते तपन्ति महात्मानो न शरीरस्य शोषणम् ॥

(म० भा० वन० २००।९६)

मन वाणी शरीर के पाप से जो बचे हैं वे बड़े महात्मा है बड़ी तपस्या कर रहे हैं केवल शरीर का सुखाना तप नहीं।

वनेऽपि दोषा प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पंचेन्द्रिय निग्रहस्तपः । अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते निवृत्त रागस्य गृहं तपोवनम् ॥

(पद्म पु० सृष्टि खं० १९।२९५)

रागी पुरुषों को (जिनके हृदय में काम क्रोधादि हैं) वन में चले जाने पर भी दोष लगे रहते हैं घर में रहता हुआ इन्द्रियों को बुरे विषयों से रोके हुए है तो वह मानो तप कर रहा है खोटे कर्म (हिंसा चोरी आदि) में प्रवृत्ति नहीं रागद्वेष से रहित है ऐसे पुरुष को घर ही तपोवन है ॥

आरोग्य लाभो लाभानाम् [पद्म पु० ५।८६।६४]

लाभों में सबसे बड़ा लाभ आरोग्यता है ।

परोपकार पुण्यानाम् ॥६५॥

पुण्यों में बड़ा पुण्य परोपकार है ।

शौचाना मर्थ शौचं चदानानामभयं यथा ॥६६॥

ईमानदारी का पैसा पास होना सबसे भारी पवित्रता है । दानों में सबसे बड़ा दान सत्पुरुष को विपत्ति से छुड़ानाहै।

यस्योपदेशतः पुण्यं पापं वाकुरुते जनः ।
स तद् भागी भवेन्मर्त्या इति शास्त्रेषु निश्चितम् ॥

(पद्म पु० ७।१।१६)

जिसके उपदेश से मनुष्य पाप पुण्य करता है वह उपेदष्टा उस पाप पुण्य का भागी होता है ।

वृत्तेन भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया ।

सुन्दर व्यवहार (आचरण) से आर्य (श्रेष्ठ) माना जाता है धन व विद्या से नहीं । ([illegible] श्लोक [illegible]०।५२)

वृत्तस्थो योऽपि चाण्डालस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥

(पद्म पु० सृष्टि खंड अ० ५०)

सदाचार सम्पन्न यदि चाण्डाल है तो देवता भी उसको ब्राह्मण समझते हैं।

पठका पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्र चिन्तकाः ।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् सपंडितः ॥

(म० भा० वन० ३१४।११०)

पढ़ने वाले पढ़ाने वाले और भी शास्त्र चिन्तक ये व्यसनी समझो जो शास्त्रानुसार चलने वाला है वह पंडित है।

चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तिः सशूद्रादतिरिच्यते ।
योऽग्निहोत्र परोदान्तः स ब्राह्मण इतिस्मृतः ॥१११

चारों वेदों का जानकार यदि दुराचारी है तो वह शूद्र से भी गया बीता है। जो अग्निहोत्री (काम क्रोध लोभादि को हनन करने वाला) और इन्द्रिय निग्रही है वह ब्राह्मण है।

इदमेवहि पांडित्यं चातुर्यमिद मेवहि ।
अयमेव परोधर्मो यदायान्नाधिकोव्ययः ॥

यही पांडित्य है यही चतुरता है यही परम धर्म है कि आमदनी से अधिक खर्च न हो।

अन्यायेन परधनादि ग्रहणं स्तेयम् ।

(मनु० ६।९२ कु० भ०)

अन्याय से दूसरे का धनादि लेना चोरी है।

न्यायागतोऽर्थ [चाणक्य सूत्र २।५४]

न्यायानुसार आया हुआ धन असली धन है ॥

न धर्म पर एवस्याब्र चार्थ परमोनरः ।
न काम परमो वास्यात् सर्वान् सेवेत सर्वदा ॥
(म० भा० वन० ३३।३९)

केवल धर्म में ही मत लगे रहो (निर्वाह के लिये आजीविका की ओर देखो तथा शरीर की रक्षा करो) और केवल धन कमाने में ही मस्त मत रहो . शरीर की रक्षा करते हुए परलोक के लिये कुछ धर्म का संग्रह कर लो) और दिन भर शरीर को सजाते ऐश आराम में ही मत गुजारो (जीवन निर्वाह का उपाय धर्मानुकूल करते रहो) सबका (धर्म अर्थ काम) सब काल में अविरुद्धरूप से सेवन करो।

अनुरामं जनोयति परोक्षे गुण कीर्तनम् ।
नबिभ्यति च सत्वानि सिद्धिलक्षण मुत्तमम् ॥६४

मनुष्यों का जिसमें प्रेम हो परोक्ष में प्रशंसा करें किसी प्राणी को उससे भय की संभावना नहो यह सिद्धि का उत्तम लक्षण है ।

कुचैलिनं दंत मलोपधारिणं वह्वाशिनं निष्ठुर भाषिणं च।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं विमुञ्चति श्रीर्यदिचक्रपाणिः॥
(चाणक्य नीति)

मलिन वस्त्रधारी, मैले दांत वाले, वहुभोजी, निठुरभाषी, सूर्योदय व सूर्यास्त के समय सोने वाले यदि विष्णु भगवान् क्यों न हों लक्ष्मी साथ छोड़ देगी।

धर्माविरोधिनी कार्या काम सेवा सदैव तु ।
(विष्णु धर्मोत्तर पु० २।६२।२)

धर्मानुकूल काम सेवन करना चाहिए।

सत्यमेव जयते नानृतम् [मु० १।२।१३]

सत्य की जय होती है झूँठ की नहीं।

विवर्जनं ह्य कार्याणां मेतत्सत्पुरुष व्रतम्।

(म० भ० विराट० १४।३६)

खोटे कार्यों का परित्याग कर देना सत्पुरुषों का व्रत है।

परिनिर्मंथ्य वाग्जालं निर्णीत मिद मेवहि।

नोपकारात्परो धर्मं नापकारादघ परम्॥

(स्कं० पु० खं० ३४ पू० ६।७)

पराहित सरिसधर्म नहि भाई।

पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

सारे शास्त्रों का मथन करके यह निश्चय किया है कि परोपकार की बराबर कोई धर्म नहीं और पर अपकार की बराबर कोई पाप नहीं।

तपः स्वधर्म वर्तित्वम् [म० भा० वन० ३१३।८८]

अपने कर्त्तव्य कर्म से विचलित न होना ही तप है।

ह्रीरकार्य निवर्तनम् ॥८८॥

कुकर्म से बचना ही लज्जा है।

गुणाधिकान् मुदं लिप्से दनुक्रोशं गुणाधमान्।

मैत्रीं समानादन् विच्छेन्नता पै रभि भूयते॥

(भा० ४।८।३४)

अपने से अधिक गुणवान् को देखकर प्रसन्नता प्रकट करे, कमती को देखकर कृपा दृष्टि करे। गुण में बराबर वाले को देखकर मित्रता का भाव करे,इस व्यवहार से प्राणी सन्ताप को प्राप्त नहीं होता है।

य एवं नैव कुप्यन्ते न लुभ्यन्ति तृणेष्वपि ।
त एव नः पूज्य तमायेचापि प्रिय वादिनः ॥
(५६।२२)

जो कभी क्रोध नहीं करते, जो तृण पर भी नीयत नहीं डुलाते जो प्रिय वादी हैं ऐसे पुरुष हमारे पूजनीय हैं ।

जानन्नापि च यः पापं शक्तिमान् न नियच्छति ।
ईशः सन् सोऽपि तेनैव कर्मणा संप्रयुज्यते ॥११॥
(म० भा० आदि० १८०)

पाप होता हुआ समझकर शक्तिशाली होते हुये जो पाप को दूर करने का भरसक प्रयत्न नहीं करता वह पाप का भागी होता है ।

भीष्मजी कहते हैं हे युधिष्ठिर ?

माते राष्ट्रे याचनका भूवन्मा चापि दस्यवः ।
(म० भा० शां० ८४।२४)

तेरे राज्य में चोर और भिखारी न होने पावें ।

क्षारं जलं वारि मुचः पिबन्ति तदेव कृत्वा मधुरं वमन्ति ।
सन्तस्था दुर्जन दुर्वचांसि पीत्वाच सूक्तानि समुद्गिरन्ति॥
(सु० र० भां०)

बादल समुद्र के खारी जल को पीते हैं उसीको मधुर करके बरसाते हैं इसी प्रकार सन्त पुरुष दुर्जनों के अनुचित बचनों को सुनकर उत्तर में मीठे बचन बोलते हैं ॥

शास्त्राण्य धीत्यापि भवन्ति मूर्खा यस्तु क्रियावान् पुरुष सविद्वान् । सुचिन्तितं चौषध मातुराणां न नाम मात्रेण करोत्यरोगम् ॥ [सु० र० भां०]

शास्त्रों को पढ़कर भी मूर्ख रहते हैं जो शास्त्रोक्त विधि का पालन करने वाले हैं वे विद्वान् हैं औषधि को विचारते रहो बार २ नाम लेते रहो तो क्या रोगों को निरोग कर देगी।

आचार्य श्रीराम शर्मा कृत पंचाध्यायी के पूर्व संस्करण से—

धर्ममाचरितुं लोको न्यायसोपानमारुहन्।
संचिनोतु बलं पूर्वं धर्महीनो यतोऽबलः ॥५॥

[लोकः] संसार [धर्ममाचरितुं] धर्म का आचरण करने के लिए [न्यायसोपानं] न्याय की सीढ़ी पर [आरुहन्] चढ़ता हुआ [पूर्वं] पहले [बलं] शक्ति को [संचिनोतु] एकत्रित करे [यतः] क्योंकि [अबलः] निर्बल [धर्महीनः] धर्म से रहित होता है।

दौर्बल्यं पातकं घोरं तद्यतो ऽधर्मवर्धनम्।
न कोऽपिदैवजान् तस्य कष्टान् वारयितुं क्षमः ६

[दौर्बल्यं] दुर्बलता [घोरं] घोर [पातकं] पाप है [यतः] क्योंकि [ततः] वह [अधर्म वर्धनं] अधर्म को बढ़ाने वाली है [तस्य] उस दुर्बल के [दैवजान्] दैव से उत्पन्न हुए [कष्टान्] कष्टों को [वारयुतुं] निवारण करने के लिए [कोऽपि] कोई भी [क्षमः] समर्थ [न] नहीं हैं।

शक्तिः पुण्यं, पुण्यफलं सम्पच्च संपदः सुखम्।
अतोहिचयनं शक्तेर्यतोधर्मः सुखावहः ॥७॥

[शक्तिः] शक्ति [पुण्यं] पुण्य है [पुण्यफलं] पुण्य का फल [सम्पद्] वैभव है [च] और [सम्पदः] वैभव से [सुखं] सुख प्राप्त होता है [अतः] इसलिए [हि] निश्चय से [शक्तेः] शक्ति का [चयनं] संचय [सुखावहः] सुखकारक [धर्मः] धर्म [मतः] माना गया है

संयमात्संचयो वृद्धिश्चाभ्यासाद् दृढ़ता तथा।
धीरतायास्तथानन्दो निर्लेपत्वेन प्राप्यते ॥८॥

[संयमात्] संयम से [संचयः] संचय [अभ्यासात्] अभ्यास से [वृद्धिः] वृद्धि [तथा धीरतायाः] धैर्य से [दृढ़ता] दृढ़ता [तथा च] और वैसे ही [निर्लेप त्वेन] अलिप्तता से [आनन्दः] आनन्द [प्राप्यते] प्राप्त होता है।

प्रथमं बलमारोग्यं द्वितीयंज्ञान मेव च।
शौचस्तृतीयं तुर्यं च धनं कीर्तिश्च पंचमम् ॥९॥
संघतिश्चबलं षष्ठं सप्तमं चात्मनो बलम्।
तत्रापि चान्तिमं प्रोक्तं सप्तमं तु महाबलम् ॥१०

[प्रथमं] पहला [बलं] बल [आरोग्यं] आरोग्य है [द्वितीयं चैव] और दूसरा बल [ज्ञानं] ज्ञान है [तृतीयं] तीसरा बल [शौच] पवित्रता है [च] और [तुर्यं] चौथा बल [धनं] धन है [च] और (पंचमं) पांचवां बल (कीर्तिः) यश है (षष्ठं) छटा (बलं) बल (संघतिः) समूह है (च) और (सप्तमं) सातवां बल (आत्मनोबलं) आत्म बल है (तत्रापिच) और उसमें भी (अन्तिमं) अन्तिम (सप्तमं) सातवां आत्मबल (महाबलं) महाबल (प्रोक्तं) कहा है।

सत्वाहारो ब्रह्मचार्यायामौ प्रकृति सेवनम्।
एतानि साधनान्याहुरारोग्यस्य विपश्चित ॥११

(सत्वाहारो) सत्वाहार (ब्रह्मचर्यायामौ) ब्रह्मचर्य और व्यायाम (च) और (प्रकृति सेवनं) प्रकृति सेवन (एतानि) इनको (विपश्चितः) विद्वानों ने (आरोग्यस्य) आरोग्य के (साधनानि) साधन (आहुः) कहा है।

विनयादभिलाषाच्च संततं मननात्तथा ।
सङ्गाच्च प्राप्यते विद्या सतामित्यवधारय ॥१२॥

(विनयात्) विनय नम्रता से (अभिलाषात्) इच्छा से (सततं) निरन्तर (मननात्) मनन करने से (तथाच) और (सतां) सत्पुरुषों के (सङ्गात्) संग से (विद्या) विद्या (प्राप्यते) प्राप्त होती है (इत्यवधारय] यह निश्चय रक्खो ।

अप्रमादाद्व्यवस्थातः सुरुचेश्च प्रदर्शनात् ।
असंशयं शौचप्राप्तिर्भवतीति सुनिश्चयः ॥१३॥

(अप्रमादात्) निरालस्यता से (व्यवस्थातः) व्यवस्था से (सुरुचेः) सुरुचि से (च) और (प्रदर्शनात्) प्रदर्शन से (असंशयं) बिना संशय के (शौचप्राप्तिः) शौच की प्राप्ति होती है (इति) यह (सुनिश्चयः) निश्चय है ।

साहसाच्च श्रमाच्चैव विश्वासाच्चानुरक्तितः ।
तथा मितव्ययाच्चैव लभ्यते ऽसंशयं धनम् ।१४॥

(साहसात्) साहस से (च) और (श्रमात्) श्रम से (तथैवहि) वैसे ही (विश्वासात्) विश्वास से (अनुरक्तितः) उसमें अनुराग होने से (मितव्ययात्) मितव्यय से (असंशयं) बिना सन्देह (धनं) धन (लभ्यते) प्राप्त किया जाता है ।

सद्गुणेभ्यश्च मित्रेभ्यः सद्भ्यः सत्कर्मणस्तथा ।
सन्मार्गेऽथ प्रयाणाच्च सत्कीर्तिं प्राप्नुते नरः १५

(सद्गुणेभ्यः) सद्गुण से (च) और (सद्भ्यः मित्रेभ्यः) अच्छे मित्रों से (तथाच सत्कर्मणः) और अच्छे कर्म से (अथच) और (सन्मार्गे) सन्मार्ग पर (प्रयाणात्) चलने

से (नरः) मनुष्य (सत्कीर्ति) सत्कीर्ति को (प्राप्नुते) प्राप्त होता है।

स्नेहात्साम्याच्च सद्भावात्साहाय्यात्सख्यमेधते ।
दार्ढ्यं चावाप्यते सघस्तुल्यैर्वाग्भेषभावकैः ॥१६

(स्नेहात्) स्नेह से (साम्यात्) समानता से (सद्-भावात् (सद्भाव से (च) और (साहाय्यात्) सहायता से (सख्यं) मैत्री (एधते) बढ़ती है (सघः) समूह (तुल्यः) समान (वाक्. भेष, भावकैः) भाषा भेष और भावों द्वारा (दार्ढ्यं) दृढ़ता को (अवाप्यते) प्राप्त होता है।

उत्साहादात्मविश्वासादेकाग्रमनसश्चहि ।
तथा च सत्यनिष्ठातः प्राप्यतेबलमात्मनः ॥१७

(उत्साहात्) उत्साह से (आत्म विश्वासात्) आत्म विश्वास से (एकाग्रमनसः) एकाग्र मन से (तथा च) और (सत्य निष्ठातः) सत्य निष्ठा से (आत्मनोबलं) आत्म बल (प्राप्यते) प्राप्त होता है।

धनं नु समयोह्य वचाण्येव मधुरा कला।
सैव शक्तिःस्फुटायास्यात् प्रसादश्चैव सौरभः ।१८

(समयः) समय (हि एव) ही (धनं) धन है (वाण्येव) वाणी ही (मधुरा) मधुर [कला] कला है [या] जो [स्फुटा] प्रकट [स्यात्] हो [सैव] वही [शक्तिः] शक्ति है [च] और (प्रसाद एव) प्रसन्नता ही (सौरभः) सौरभ है।

मुद्रक—पं० गिरधरलाल शर्मा, लक्ष्मी प्रिंटिंग प्रेस, मथुरा।

मनुष्य को देवता बनाने वाली पुस्तकें।

यह बाज़ारू किताबें नहीं हैं, इनकी एक एक पंक्ति के पीछे गहरा अनुभव और अनुसंधान है। विनम्र शब्दों में हमारा दावा है कि इतना खोज पूर्ण अलभ्य साहित्य इतने स्वल्प मूल्य में अन्यत्र नहीं मिल सकता।

(१) मैं क्या हूं ? |=)
(२) सूर्य चिकित्सा विज्ञान |=)
(३) प्राण चिकित्सा विज्ञान |=)
(४) पर काया प्रवेश |=)
(५) स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या |=)
(६) मानवीय विद्युत के चमत्कार |=)
(७) स्वर योग से दिव्य ज्ञान |=)
(८) भोग में योग |=)
(९) बुद्धि बढ़ाने के उपाय |=)
(१०) धनवान बनने के गुप्त रहस्य |=)
(११) पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि |=)
(१२) वशीकरण की सच्ची सिद्धि |=)
(१३) मरने के बाद हमारा क्या होता है ? |=)
(१४) जीव जन्तुओं की बोली समझना |=)
(१५) ईश्वर कौन है ? कहाँ है ? कैसा है ? |=)
(१६) क्या धर्म ? क्या अधर्म ? |=)
(१७) गहना कर्मणोगतिः |=)
(१८) जीवन को गूढ़ गुत्थियों पर तात्विक प्रकाश |=)
(१९) पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा |=)

[२०] शक्ति संचय के पथ पर |=)

[२१] आत्म गौरव की साधना |=)

[२२] प्रतिष्ठा का उच्च सोपान |=)

[२३] मित्र भाव बढ़ाने की कला |=)

[२४] आन्तरिक उल्लास का विकाश |=)

[२५] आगे बढ़ने की तैयारी |=)

[२६] आध्यात्म धर्म का अवलम्बन |=)

[२७] ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन |=)

[२८] ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्म योग |=)

[२९] यम और नियम |=)

[३०] आसन और प्राणायाम |=)

[३१] प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि |=)

[३२] तुलसी के अमृतोपम गुण |=)

[३३] आकृति देखकर मनुष्य की पहचान |=)

[३४] मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शिक्षा |=)

[३५] ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग |=)

[३६] हस्त रेखा विज्ञान |=) [३७] विवेक सतसई |=)

[३८] सञ्जीवन विद्या |=)

[३९] गायत्री की चमत्कारी साधना |=)

[४०] महान जागरण |=)

कमीशन देना क़तई बन्द है। हां, आठ या इससे अधिक पुस्तकें लेने पर डाक ख़र्च हम अपना लगा देते हैं।

मैनेजर—'अखण्ड-ज्योति' कार्यालय, मथुरा।

मुद्रक—पं० हरकरन लाल शर्मा, युवराज प्रिंटिंग वर्क्स, मथुरा।